विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक
महाराज विक्रमादित्य शोध पीठ
1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010
फोन : 0734-2521499, 0755-2660407
e-mail : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-2
उज्जयिनी में दो बार हुआ था अश्वमेध यज्ञ
डॉ. श्याम सुंदर निगम

पृष्ठ क्र. 3-4
विक्रम संवत् उत्तर भारत में चैत्र और दक्षिण भारत में कार्तिक शुक्ल से
भगवतीलाल राजपुरोहित

पृष्ठ क्र. 5-6
मालवा का लौह युग छठीं शताब्दी से
मुकेश शाह

पृष्ठ क्र. 7-8
पुस्तक चर्चा
भारत विखंडन की साजिशें बड़ी गहरी हैं
राजेश्वर त्रिवेदी

उज्जयिनी में दो बार हुआ था अश्वमेध यज्ञ

डॉ. श्याम सुंदर निगम

उज्जैन में दो बार अश्वमेध यज्ञ होने का संदर्भ मिलता है लेकिन विभिन्न मतों के बाद भी यह तथ्य स्थापित होता है कि विक्रमादित्य ने ही शकों पर विजय प्राप्त कर अश्वमेध का आयोजन किया था। यह अश्वमेध उज्जैन में शुंगों द्वारा नहीं किया गया तो प्रश्न यह उठता है कि आखिर वह किसके द्वारा किया गया! उत्तर केवल यह है कि वह उस समय के महान विजेता विक्रमादित्य ही रहा होगा। विभिन्न जनुश्रुतियाँ भी विक्रमादित्य को उज्जैन का अश्वमेधकर्ता ही मानती हैं। अत: यह निष्कर्ष निकालना अन्यथा न होगा कि उज्जयिनी के गर्दभिल्ल-नरेश विक्रमादित्य ने शकों पर विजय प्राप्त कर संवत का प्रवर्तन कर अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया था। पुष्यमित्र का दूसरा अश्वमेध यज्ञ उज्जैन में ही सम्पन्न हुआ होगा।

'उज्जयिनी चिन्ह' से अंकित कुछ अन्य सिक्कों पर ईसा पूर्व पहली-दूसरी शताब्दी के अक्षर वाटिका में यह द्विवृत्तात्मक 'उज्जयिनी चिन्ह' अंकित हुआ है। इन सिक्कों पर कभी-कभी घोड़े की एक प्रतिमा भी प्राप्त होती है। क्या यहाँ घोड़ा केवल सूर्य- भगवान का निदर्शक है या पुष्यमित्र शुंग के अश्वमेध का? पुष्यमित्र ने जो अश्वमेध यज्ञ कराया, वह महाभाष्यकार गोनर्दीय पतंजलि के द्वारा कराया गया। इसलिए पतंजलि ने अपने महाभाष्य में लिखा-'इह पुष्यमित्रं याजयाम : (हम यहाँ पुष्यमित्र से यज्ञ करवा रहे हैं।)' यहाँ का क्या अर्थ है? पाटलिपुत्र में, अयोध्या में, विदिशा में, या उज्जयिनी में? उसने जो दो अश्वमेध यज्ञ किए थे, उनमें से एक यदि अयोध्या का माना जाए, तो क्या दूसरा उज्जयिनी का था? उपलब्ध चित्र से यह सिद्ध हो जाता है कि पुष्यमित्र का दूसरा अश्वमेध यज्ञ उज्जैन में ही सम्पन्न हुआ होगा।

उल्लेखनीय है कि कुछ वर्ष पूर्व उज्जैन परिक्षेत्र वर्षा की भारी कमी झेल रहा था। उस समय क्षिप्रा सरिता कई स्थानों पर प्रवाह-हीन होकर सूखती गई थी। ऐसे समय में कई खंडित प्रतिमाओं के साथ एक लघु अश्व प्रतिमा भी प्राप्त हुई। साँची के शुंगकालीन तोरण का प्रस्तर इसमें प्रयुक्त हुआ। समुद्रगुप्त के अश्वमेध प्रकार के सिक्कों पर अंकित अश्वमेध अश्व की ही भाँति यह अश्वाकृति है। कई वर्ष पूर्व पुराविद स.का. दीक्षित ने पुष्यमित्र शुंग द्वारा किए गए दो अश्वमेध यज्ञ में से परवर्ती अश्वमेध के उज्जयिनी में होने की संभावना व्यक्त करते हुए लिखा था कि -'इनके अतिरिक्त कुछ अन्य वैष्णव चिन्ह भी उज्जयिनी की प्राचीन मुद्राओं पर पाए जाते हैं। इनमें से कुछ 'अष्टार चक्र' से अंकित है। वेद ब्राह्मण ग्रंथ आदि के अनुसार 'अष्टार चक्र' सूर्य-विष्णु से संबंधित है।'

प्रथम जिज्ञासा की तृप्ति संस्कृत एवं संस्कृति के विद्वान लेखक डॉक्टर कवठेकर के एकाधिक लेखों से बहुत कुछ होती है। उनके अनुसार कालीसिंध नदी, जो मालवा के पठार पर बहती है, दशार्ण एवं अवंती प्रदेशों की सीमा बनाती थी। यह मालविकाग्निमित्रम् में वर्णित वही सिंधु नदी है जिसके दक्षिण तट पर वसुमित्र ने यवनों को पराजित किया था।

पर यह मत कुछ सीमाएँ रखता है। प्रथम तो यह कि यह नदी दक्षिण से उत्तर की ओर बहती है और इस कारण पूर्व अथवा पश्चिम तट बनाती है, न कि उत्तर और दक्षिण तट। दूसरा यह कि यदि इसी सिंधु के किनारे युद्ध हुआ होता तो विजय की सूचना विदिशा से मगध जाती, न कि पाटलिपुत्र से विदिशा प्रेषित की जाती। यदि एक बार कालीसिंध को युद्ध-स्थल न भी माना जाय तो ग्वालियर परिक्षेत्र में पवाया (प्राचीन

पद्मावती) के निकट बहने वाली सिंध नदी की ओर दृष्टि जाती है जिसका बहाव पर्व से पश्चिम की ओर है। दोनों ही स्थितियों में यह मानना होगा कि वसुमित्र का यवनों से युद्ध वर्तमान मध्यप्रदेश के उत्तरी या मध्य क्षेत्र में ही कहीं रहा होगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या शुंगों का राज्य या प्रभाव उज्जयिनी पर था, जहाँ कि उस काल में उज्जैन में अश्वमेध यज्ञ हुआ था? उत्तर बहुत कुछ सकारात्मक हैं। साँची के शुंगकालीन तोरण-द्वारों के निर्माण में उज्जयिनी के अनेक दानदाताओं के नाम तोरणों और प्रदक्षिणा-पथ के लघु-लेखों में उत्कीर्ण दिखाई देते हैं। बौद्ध एवं ब्राह्मण धार्मों के अनेक अनुयायियों ने इनके निर्माण हेतु अपना आर्थिक योगदान किया था। स्पष्ट है उज्जैनवासियों पर पर्याप्त शुंग प्रभाव रहा था। यह भी संभव है कि उज्जैन पर भी विदिशा के शुंगों का अधिकार रहा हो। एक और भी तत्व इस समय उज्जयिनी से जुड़ा हुआ था। ऐसा लगता है कि राजनीतिक केंद्र न होते हुए भी उज्जैन एक श्रेष्ठतम व्यापार-केंद्र बन चुका था। पेरिप्लस में एक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार केंद्र के रूप में उसका जो वर्णन किया गया है, वह सहज ही है। टालेमी का विवरण भी यह साक्ष्य देता है। लगता है कालिदास के समय उज्जैन एक राज केन्द्र कि अपेक्षा व्यापार एवं संस्कृति का नैतिक केंद्र था। उसे पांडिचेरी के औरोविल एवं पश्चिमी एशिया के हॉन्गकॉन्ग नगरों का सम्मिलित रूप मन जा सकता है। उसकी यह स्थिति काफी समय तक कायम रही। चतुर्भाणी में तो उसे सार्वभौम नगर कहा गया है। यह वह समय था जब प्रथम बार उज्जैन राजधानी से वंचित हुआ था और शुंग-राजधानी विदिशा मालवांचल में महत्वपूर्ण हो गई थी।

किंतु सहसा प्रथम सदी ईसा पूर्व में साँची क्षेत्र में दानदाताओं में आकस्मिक कमी आ गई थी। निम्नलिखित विवरण ध्यान आकर्षित करते हैं-

1. सबसे अधिक दानपति दूसरी शती ईसा पूर्व के पूर्वार्द्ध में साँची आए। इनमें उपासक-उपासियों की प्रसूत संख्या पहले और भिक्षु-भिक्षुणियों की संख्या 200 से ऊपर बाद में आती है। राजा- रानियों का योगदान नगण्य से रहा। उज्जयिनी, उदुम्बरघर, कटकजूय, काँपासीग्राम, कुरर, नन्दिनगर, नाव ग्राम, पुष्कर, भोगवर्द्धन, मड़लाचिकट, माहिष्मती, मोरजाभिकटग्राम, वाडिवहन तथा विदिशा से आने वाले दानपतियों की संख्या बहुत बड़ी थी।

2. दूसरी शती ई.पू. उत्तरार्द्ध में ऊपर की संख्या के आधे दानपति भी नहीं आये। अधिकांश दानपति उज्जयिनी, कुरर, नन्दिनगर तथा विदिशा से आये।

3. पहली शती ई.पू. में दानपतियों की संख्या बहुत कम हो गई। अचावड़, उज्जयिनी, कुरर, पुष्कर, पेरुकुप, वालिवहन, विदिशा से ही लोग आये।

4. आश्चर्य है कि पहली शती ईसा पूर्व में स्तूप क्रमांक 1 और स्तूप क्रमांक 3 के जनप्रसिद्ध तोरण द्वार बनवाने के लिए इतनी कम संख्या में दानपति आए। तोरण द्वारों से पहले जो निर्माण कार्य हुए उनमें सैकड़ों दानपतियों ने भाग लिया था। तो भी तोरण द्वारों की भव्यता अन्य निर्माण -कार्यों में सबसे आगे रही, शिल्पकला अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी।

यह इसलिए था कि पहली शती के शिल्पी एवं स्थापति अपने क्षेत्रों में सीमित हो गए थे। इसका एक कारण इस समय उज्जैनी में गर्दभिल्ल सत्ता का अभ्युदय एवं वीर, न्यायी एवं अनेक विद्वतजनों, वैज्ञानिकों एवं शिल्पकारों के संरक्षक विक्रमादित्य का उज्जैन में सत्तारूढ़ हो जाना था और विदिशा की अपेक्षा उज्जैन को अवंती क्षेत्र की राजधानी बना लेना था। स्थिति जो भी रही हो, उसके पूर्व जब मगध, अयोध्या और विदिशा में पुष्यमित्र के अधीन यह क्षेत्र रहे थे, तब भी यवनों को दूसरी बार पराजित किया गया होगा एवं उज्जयिनी में दूसरे अश्वमेध यज्ञ की परिपूर्ति हुई होगी।

इस काल में भारतीय यवनों की भूमिका पर्याप्त विचारणीय हो गई थी। बैक्ट्रिया के यवन पंजाब व सिंध को अधिकृत करने में सफल हो गए थे और वे भारत के आंतरिक भागों में आक्रमण करने का स्वप्न साकार कर रहे थे; यद्यपि डेमेट्रियस (दमित), यूक्रेटाइडस, मीनांडर, अगाथोक्लीज आदि परस्पर विग्रह-ग्रस्त थे; किंतु समान महत्वाकांक्षा से ग्रस्त थे। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि ये यवन माध्यमिका व साकेत होते हुए कुसुमध्वज (पाटलिपुत्र) तक पहुँचेंगे, किंतु मूल भूमि में परस्पर संघर्षरत होने के कारण इन्हें तत्काल वापस लौटना पड़ा था। कलिंगराज महामेघ वाहन के खोरवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में जिसके मगध के वह सतिमित्र (संभवत: पुष्यमित्र या कोई उत्तराधिकारी) पर आक्रमण और उससे भय खाकर लौट गए दमित(डेमेट्रियस) का उल्लेख आया है।

बहुत संभव है, इन आक्रामक यवनों को वसुमित्र ने प्रथम बार और पलायन करते यवनों पर अयोध्या के शुंग शासकों ने दूसरी बार पराजित किया हो और इस बार कारण पुष्यमित्र के खाते दूसरे अश्वमेधकर्ता का श्रेय जाता हो। उत्तर व पूर्वी भारत की इस आपाधापी के बीच शुंगों को एक नितांत सुरक्षित एवं निरापद स्थान की आवश्यकता थी और वह स्थल धार्मिक एवं सुसम्पन्न उज्जैन ही हो सकता है। प्राप्त अश्वमेध यज्ञ के प्रतीक अश्व-प्रतिमा इसका सार्थक प्रमाण देती है।

विक्रम संवत् उत्तर भारत में चैत्र और दक्षिण भारत में कार्तिक शुक्ल से

भगवतीलाल राजपुरोहित

बहुधा संवत् कहने से ही विक्रम संवत् का बोध होता रहा। गुप्तकाल के बाद के प्राचीन अगणित अभिलेखों में केवल संवत् शब्द लिखकर विक्रम संवत् की संख्या लिखी जाती रही। उत्तर भारत में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से और दक्षिण भारत में कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से इसका आरंभ माना जाता है और तदनुसार गणना की जाती है। अत: दक्षिण भारत में उत्तर भारत से पाँच माह पूर्व विक्रम सवंत् का आरंभ माना जाता है। विक्रम संवत् भारत का प्रसिद्ध और लोकप्रिय संवत् है। यह भारत, नेपाल, मारिशस आदि देशों में प्रचलित है और इन देशों की जनता की दैनिक धार्मिक गतिविधि का प्राय: मार्गदर्शक है। यह परम्परागत संवत् एक हजार से अधिक वर्षों से विक्रम, विक्रमादित्य, साहसांक, शकारि आदि विभिन्न नामों से अभिहित हो रहा है और पंचांगों तथा जन्म-पत्रिकाओं में इसकी गणनानुसार तिथि, मास, वर्ष, नक्षत्र आदि का उल्लेख हो रहा है। प्राचीन शिलालेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों मुद्राओं, हस्तलिखित पुस्तकों में इस संवत् के अनुसार दिन, मास, वर्ष की प्रस्तुति होती रही है। स्वतंत्रता के बाद भारत शासन ने शक संवत् को शासकीय संवत् घोषित किया, तो भी आम जनता की गतिविधि में विक्रम संवत् का प्रचलन यथावत् है। यह इस संवत् की लोकप्रियता और जीवनशक्ति का प्रमाण है। यह लोकमान्य संवत् है।

सृष्ट्यब्द, सप्तर्षि संवत्, कलिसंवत्, युधिष्ठिर आदि पौराणिक संवत् केवल पंचांगों में अंकित मिलते हैं। बुद्ध संवत्, महावीर संवत् आदि उनके धार्मिक अनुयाईयों में प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भी जो अनेक संवत् समय समय पर प्रचलित होते रहे वे प्राय: अल्पजीवी ही रहे। वंशजों तथा धार्मिक अनुयाइयों द्वारा जब तक उपयोग किया जाए तब तक वे संवत् चलते हैं। परन्तु विक्रम संवत् ऐसी किसी सीमा से बँधा नहीं है क्योंकि उसे जनता ने अपना लिया है और वह उसके अनुसार अपनी दैनिक धार्मिक गतिविधि चलाती है। यह क्रम पीढ़ियों से चल रहा है। अत: यह संवत् भी जनता से जीवनशक्ति पाकर गतिशील है। जनता की जन्म पत्रिकाओं, ज्योतिष्यों, तीर्थपंडितों में वह बना रहता है। बहुधा केवल संवत् शब्द से ही परंपरा में विक्रम संवत् का बोध होता रहता है। इससे विक्रम संवत् की सर्वस्वीकृति का बोध चिरकाल से प्रकट होता रहा है।

इस लोकप्रिय संवत् का प्रवर्तक राजा विक्रमादित्य माना जाता है। यह अवन्ती का राजा था। उसकी राजधानी उज्जयिनी थी। इसकी महिमा प्रकट करती अनेक पारंपरिक कथाएँ, अनुश्रुतियाँ हैं तद्नुसार वह परम प्रतापी राजा था। उसने विदेशी आक्रान्ता शकों को पराजित करके शकारि उपाधि धारण की थी। वह परम साहसी था। अत: साहसांक कहलाता था। इसलिए विक्रम संवत् शकारि संवत् अथवा साहसांक संवत् भी कहलाता है। दक्षिण भारत में इसे विक्रमार्क संवत् भी कहते हैं। अलबरुनी के अनुसार उसने इस संवत् का नाम चन्द्रबीज भी किसी पुस्तक में पढ़ा था।

परम्परानुसार विदेशी शकों को पराजित करके विक्रमादित्य ने अपनी अभूतपूर्व विजय की स्मृति में जो संवत् चलाया वही उसके नाम से विक्रम संवत् कहलाता है। जैन परम्परानुसार शकों को पराजित करके विक्रमादित्य ने अपने राज्य की जनता को प्रचुर धन द्वारा अऋण या ऋणरहित करने की स्मृति में यह संवत् चलाया। एक परंपरा यह भी कहती है कि राजा विक्रमादित्य की मृत्युतिथि पर यह संवत् चलाया गया। ये सब सूचनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि विक्रम संवत् विक्रमादित्य की महान् उपलब्धियों की स्मृति में प्रवर्तित हुआ। यह विक्रमादित्य परवर्ती राजाओं के आदर्श रूप में मान्य था। इसीलिए अनेक राजा उसके नाम या नामांश को अपनी उपाधि बनाते रहे।

भारतीय परम्परा विक्रमादित्य की महानता और उसके महत्वपूर्ण अस्तित्व का सतत बखान करती रही। परन्तु आधुनिक इतिहास में उसका अस्तित्व मान्य नहीं हुआ। इतिहास ने विक्रमादित्य की समस्त कथाओं को मनगढ़ंत माना। विभिन्न जैन पट्टावलियों को इतिहास सम्मत मानते हुए भी उनमें प्रस्तुत विक्रमादित्य के उल्लेखों को वे नकारते रहे। क्योंकि विक्रमादित्य के कोई पुराप्रमाण नहीं थे। केवल विक्रम को नकारने के लिए स्वतंत्र पुस्तकादि भी डॉ. डी. सी. सरकार जैसे मान्य इतिहासकार ने लिखी। उनसे पहले पूर्व और पश्चिम के विभिन्न इतिहासकारों ने विक्रम संवत् प्रवर्तक विभिन्न नाम सुझाये। क्योंकि प्राचीनकाल से ही कृत, मालव या विक्रम नाम से प्रचलित इस संवत् का प्रवर्तन करने वाले विभिन्न नामों की अटकलें लगाते हुए उनके लिए आवश्यक तर्क गढ़े जाने लगे। प्राय: डेढ़ शताब्दी तक ऐसे विभिन्न प्रयास होते रहे। परन्तु उन समस्त विवादों से निरपेक्ष जनता इस संवत् को पूर्ववत् उपयोग करती रही और विक्रम संवत् जनता में गजगति से गतिशील है। आधुनिक इतिहासकारों के विभिन्न प्रमुख मत इस प्रकार हैं।

◆ फगुर्सन के अनुसार विक्रम संवत् की स्थापना 545 ई. में औलिकर यशोधर्मा द्वारा हुई थी।

◆ कीलहार्न के अनुसार इस संवत् का आरंभ कार्तिक मास में होने से यह कृत संवत् कहलाता है।

◆ कनिंघम और फ्लीट के अनुसार विक्रम संवत् का आरंभ कनिष्क ने किया।

◆ मार्शल के अनुसार गान्धार के राजा अज ने विक्रम संवत् का आरंभ किया।

◆ गोपाल अय्यर के अनुसार शक महाक्षत्रप चष्टन ने विक्रम संवत् चलाया।

◆ काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार गौतमीपुत्र सातकर्णि ने विक्रम संवत् का प्रवर्तन किया।

◆ दत्तात्रय रामकृष्ण भण्डारकर के अनुसार विक्रम संवत् का आरंभ चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य ने किया। उसके सिक्कों, सीलों, शिलालेखों में उसके चन्द्रगुप्त विक्रम अथवा विक्रमादित्य नाम अंकित है।

◆ दिनेशचन्द्र सरकार के अनुसार विक्रम संवत् 57 ई. पू. में तक्षशिला काबुल क्षेत्र के पह्लव वोनोन्ज ने जिस संवत् का आरंभ किया था, वही गुप्तकाल के बाद विक्रम संवत् कहलाया।

इस प्रकार विभिन्न विद्वान् अपने अपने तर्कों के अनुसार ''अपनी अपनी ढपली अपने अपने राग'' कहावत अनुसार विक्रम संवत् संवत् के विभिन्न स्थापक की कल्पना करते रहे। मूल विक्रमादित्य की उपेक्षा कर नयी-नयी कल्पना करते रहे। उन काल्पनिक तर्काभासों में विभिन्न विसंगतियाँ हैं। यह संवत् शकारि द्वारा प्रवर्तित है। अत: शकों, कुषाणों या पह्लव द्वारा प्रवर्तन तो 'वदतो व्याघात' अर्थात् मूल तथ्य का ही विरोध होगा। वे शकारि कैसे कहला सकते हैं।

यशोधर्मा, गौतमीपुत्र सातकर्णि आदि कभी विक्रमादित्य नहीं कहलाये। चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपाधि- विक्रमादित्य थी। मूल विक्रमादित्य उससे प्राचीन था जिसकी उसने उपाधि ग्रहण की थी। उसने शक को मार डाला, यह देवीचन्दगुप्त नाटक के प्राप्त अंश और उसके अनुसरण के आधार पर कहा जाता रहा। परन्तु वह एक नाटक है जिसमें कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दिखाये मार्ग अनुसार परिकल्पना प्राप्त होती है। चन्द्रगुप्त के समय शक तो थे परन्तु वे उसके बाद तक बने रहे। अत: उसे शकग विनाश्सक नहीं माना जा सकता।

जैन कथाओं के अनुसार विक्रमादित्य ने अवन्ती पर अधिकार कर बैठे शकों को नष्ट कर राज्य प्राप्त किया। अत: वह शकारि कहलाया। तब उसने अपने नाम से विक्रम संवत् चलाया। विभिन्न प्राचीन शिलालेखों में कृत संवत् और मालव संवत् की गणना विक्रम संवत् अनुसार प्राप्त होती है और बहुत बाद में धौलपुर शिलालेख में विक्रम नाम प्राप्त होता है। अत: कल्पना की गयी कि कृत या मालव संवत् को नौवीं शती में विक्रम नाम दिया गया। इससे पूर्व विक्रम नाम अज्ञात था। यद्यपि इससे पूर्व के विभिन्न शिलालेखों में केवल वर्ष या संवत् नाम से विक्रम संवत् अनुसार वर्ष संख्या अंकित की जाती रही।

परन्तु नवप्राप्त चकरावदा मूर्तिलेख पर यह लेख अंकित है। विक्रम संवत् 8 (आठ) (विक्रमार्क, 2014-15 पृ. 43। यह ईस्वी पूर्व प्रथम शती की ब्राह्मीलिपि में उत्कीर्ण है। इससे ज्ञात होता है कि इस संवत् का विक्रम संवत् नाम इसके आरंभ से ही था। विक्रम का एक नाम कृत था। यह विभिन्न सिक्कों, मुद्राओं, मुद्रांकों और मूर्तिलेखों से ज्ञात और पुष्ट होता है। अत: इस संवत् का नाम कृत संवत् भी प्रचलित हो गया। उस समय यह संवत् मालवा और आसपास विशेष प्रचलित था।

मालवा के (दशपुर-उदयपुर-कोटा) क्षेत्र में यह सदियों तक प्रचलित रहा। अत: दशपुर के औलिकर राजाओं ने इसे मालवगण स्थापना से सम्बद्ध मान लिया। अवन्ती के उत्तर पूर्व में मालव राज्य विद्यमान था और उनके सिक्के भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। अत: पुरातात्विक प्रमाण से यह सिद्ध होता है कि विक्रम संवत् ई.पूर्व 57 के सुप्रसिद्ध उज्जयिनी नरेश विक्रमादित्य द्वारा प्रवर्तित है। राजनीतिक परिस्थितियों से भी ज्ञात होता है कि ई.पू. 57 के आसपास कोई भी राजा ऐसा समर्थ नहीं था, जिसका राज्य अवन्ती पर हो सकता हो। (विक्रमार्क, 2014-15 पृ. 1-7) केवल विक्रमादित्य ही उस समय सर्वसमर्थ राजा था।

इस प्रकार भारत के लोकप्रिय विक्रम संवत् और विक्रमादित्य को नकारने या विवादास्पद बनाये रखने का खंडन नवप्राप्त पुरातात्त्विक अवशेषों से स्वयं ही हो जाता है और अब यह निर्विवाद है कि ई.पू. प्रथम शती में उज्जयिनी में विक्रमादित्य का राज्य था और वही कथा कहानियों का लोकप्रिय नायक है। ऐसे पुरान्वेषण और उनकी साहित्य तथा अनुश्रुतियों से सम्बन्ध स्थापना का सघन प्रयास महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, उज्जैन द्वारा किया गया।

इस मार्ग पर साहित्यिक, पुरातात्विक और लोक साहित्य के समन्वय परक अध्ययन का जो पथ चल रहा है वह आगे और भी इस दिशा में मार्ग प्रशस्त करेगा तथा वह फलीभूत होता रहेगा।

मालवा का लौह युग छठीं शताब्दी से

मुकेश शाह

मालवा में लौह-युग का प्रारम्भ भी लगभग छठीं ई. पू. माना जाता है। पुरातत्वीय अवशेषों से ज्ञात जानकारी इस कालखण्ड में उज्जयिनी के नगरीय वैभव की गाथा कहती है। उज्जयिनी के प्रकार के निर्माण के समय यहाँ कृष्ण एवं रक्त मृदभाण्डों निर्माण प्रारम्भ हुआ और इसके साथ ही मालवा में लौह-युगीन संस्कृति भी विकसित हुई। भारत में सिंधु घाटी की सभ्यता के पश्चात् छठी शताब्दी ई. पू. से नगर पुन: अस्तित्व में आते है। इसी नगरीकरण को द्वितीय नगरीय क्रांति कहा गया है। मालवा में पुरातत्वीय उत्खननों से उज्जैन, विदिशा, महेश्वर-नावड़ाटोड़ी इत्यादि स्थानों से नगरीकरण के प्रमाण मिलते हैं। प्रथम नगरीकरण में जहाँ धातु-प्रस्तर का प्रयोग हुआ, विशेषकर ताँबा और काँसा का, वहीं द्वितीय नगरीकरण की प्रमुख धातु लोहा थी। लोहे के प्रयोग के कारण छठीं शताब्दी ई. पू. को लौह युग भी कहा जाता है। लौह युग का विकास प्रारम्भ में छोटे-छोटे गणराज्यों के विकास के साथ हुआ। इन गणराज्यों में लौह तकनीकी का प्रयोग बढ़ता गया और कुछ गणराज्यों का सामर्थ्य अन्यों से बढ़ गया और इसकी परिणिति महाजनपदों के रूप में हुई। लौह युग की संस्कृति राजनीतिक परिपक्वकता के रूप में सामने आई। ऐसे षोडश महाजनपदों का विकास भारत में हुआ। कालान्तर में जब किसी एक महाजनपद ने अन्य पर आक्रमण करके वहाँ अपनी प्रभुसत्ता पायी, तब महाजनपद, साम्राज्य के रूप में विकसित हो गये। इस प्रकार बुद्ध के समय में चार प्रमुख महाजनपद थे, जो मगध, कौशल, वत्स एवं अवन्ती के रूप में विख्यात हुए।

इस विकास की परिणति के फलस्वरूप पाटलिपुत्र, कौशाम्बी तथा उज्जयिनी जैसे बड़े-बड़े नगरों का निर्माण हुआ एवं जन-साधारण के भौतिक ऐश्वर्य की वृद्धि हुई। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी में विकास के फलस्वरूप पत्थरों द्वारा निर्मित तथा पकी हुई ईंटों से बनाये हुए मकान अधिकाधिक उपलब्ध होने लगे। राजप्रासादों के परिमाण तथा मजबूती में सर्वथैव वृद्धि होने लगी। लौहयुगीन शस्त्रास्त्रों के कारण युद्ध-शास्त्र में नया मोड़ आया। शत्रुओं से बड़े-बड़े एवं समृद्ध शहरों का संरक्षण करने हेतु विशाल एवं मजबूत तटबन्दियाँ बनाना आवश्यक हो गया। उज्जयिनी में आदितम् तटबन्दी की नींव डाली गई, जो कि कीचड़ से बनाई गई थी। उज्जयिनी के गढ़कालिका के द्वितीय उत्खनन में जल-परिखा के अतिरिक्त मिट्टी और ईंटों के चूरे से बनाया गया एक मार्ग भी प्राप्त हुआ हैं जो कि संभवत: विश्व की प्राचीनतम् पक्की सड़क थी। संभवत: इसी मार्ग से उदयन-वासवदश्र ने कौशाम्बी की ओर पलायन किया था।

इसी उत्खनन के मध्य पीपल खोदरा नाले के पास 30-35 फीट लम्बा-चौड़ा कुण्ड मिला, जिसका निर्माण आद्य-मौर्य युग में हुआ था। मच्छेन्द्र नाले के पूर्व की ओर एक पकी ईंटों की नहर मिली है, वह भी सम्भवत: आद्य-मौर्य या उससे भी पूर्व की है। इसमें अंतर-अंतर पर काचित इष्टिकाएँ लगी थी। काचित इष्टिकाओं का काल मौर्य-पूर्व का है। गढ़कालिका में एक जगह मणि बनाने का कारखाना भी मिला है। यहाँ से लौह-धातु गलाने की भट्टियाँ तथा इस्पात निर्माण हेतु आवश्यक वस्तुएँ भी मिली हैं। यहीं से नलिका कूपों की भी प्राप्ति हुई। इस उत्खनन में ऋण-मुक्तेश्वर के आस-पास से चित्रित धूसर पात्र भी प्राप्त हुए है। ये सभी प्राक्-मौर्ययुगीन हैं। उज्जयिनी के उत्खनन में काष्ठ प्राकार की प्राप्ति भी महत्वपूर्ण है, जिसे गर्दे ने खोजा था, यह भी मौर्ययुगीन है। उज्जैन के अतिरिक्त विदिशा से भी मौर्ययुगीन एक नहर प्राप्त हुई हैं, जो कि संभवत: कृषि-कर्म में प्रयुक्त होती थी। उज्जैन के अतिरिक्त कसरावद से भी प्राचीन सड़क के प्रमाण मिले हैं। जल निकासी के सबसे विकसित प्रमाण उज्जैन और आवरा से प्राप्त हुए हैं।

इसी प्रकार पुरातात्विक और साहित्यिक साधनों की सहायता से मालवा की प्राचीन तकनीकी का ज्ञान हो पाया है। इससे केवल ताम्राष्मीययुगीन अपितु छठी शताब्दी ई. पू. से मध्ययुगीन तकनीकी का ज्ञान भी होता है। वैज्ञानिक तकनीकी संदर्भ के अन्तर्गत घरों, प्रासादों के निर्माण प्रकार, सड़क तथा जल निकासी, जल संग्रहण एवं कृषि कर्म, यातायात के साधन,

अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत सिक्कों का प्रचलन तथा उनके निर्माण में प्रयुक्त धातु तथा धातुओं को गलाने की तकनीकी, सिक्के बनाने के लिए साँचों का प्रयोग तथा आहत सिक्के बनाने की सिल, धातु को पीटकर उसे पतरे का रूप देकर उस पर विभिन्न प्रकार के प्रतीक चिह्नों को ठप्पांकित करना, इत्यादि प्रमुख हैं।

घरों में विभिन्न प्रकार के हाथ से निर्मित तथा कुम्हार के चाक पर निर्मित बर्तनों के व्यवहार, चूल्हों का प्रयोग, घर की सुरक्षा हेतु दरवाजे, प्रकाश आदि की व्यवस्था के लिए खिड़कियों का होना तथा इनमें लौह धातु का प्रयोग चटकनियों, सांकल इत्यादि के रूप में होना, तद्युगीन तकनीकी को प्रदर्शित करता है। घर बनाने के लिए बाँस तथा घास के स्थान पर अब मिट्टी तथा ईंटों का व्यवहार होने लगा था, जो कि सिंधु-सभ्यता से ही व्यवहृत था।

पूर्वोद्धृत विवरण में वैद्यगिरि का पता भी चलता हैं, जब प्रद्योत के स्वास्थ्य को ठीक करने के लिए मगध से जीवक नामक वैद्य उज्जयिनी आया था और वत्सराज उदयन की चिकित्सा हेतु उज्जयिनी के वैद्य प्रद्योत के आदेश पर उसकी सुश्रुषा कर रहे थे तथा उसके व्रणों (घावों) की चिकित्सा के अलावा उसके लिए 'मणि-भूमिका' की व्यवस्था भी की गई थी, यह वर्णन प्रतिज्ञा यौगन्धरायण से प्राप्त होता है।

इस प्रकार मालवा में वैज्ञानिक तकनीकी उत्क्रांति का पुनर्नवीनीकरण छठी शताब्दी ई. पू. से प्रारंभ होने लगा। वस्तुत: पुनर्नवीनीकरण से यहाँ तात्पर्य यह है कि इस युग से पूर्व वैदिक-काल और उसके भी पूर्व सिंधु-सभ्यता तथा पाषाण-युग में मनुष्य ने अपने रहवास, दैनन्दिनी आवश्यकताओं तथा जीवन के संघर्ष के लिए जो भी उपाय किये, वे सभी तकनीकी क्षेत्र के अन्तर्गत ही आती है। भले ही आदिकाल में मनुष्य ने पत्थर का प्रयोग पशुओं से बचने के लिये तथा उसी का प्रयोग शिकार, अग्नि तथा अपने घर के लिये किया अथवा कीमती पत्थरों का प्रयोग शृंगार के लिये किया, ये सभी तकनीकी प्रयोग के अन्तर्गत ही आती है; इसमें ग्रामीण सभ्यता से ऊपर नगरीकरण के लिये जो भी प्रयोजन किये गये हो वे सब समाहित हैं।

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ का यूट्यूब चैनल 'भारत विक्रम'

सार्वभौम सम्राट विक्रमादित्य की कथा-गाथा से देश-दुनिया का परिचय कराने के लिए महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ नित नवाचार कर रहा है। इस श्रृंखला में यूट्यूब चैनल 'भारत विक्रम' आरंभ किया गया है। बीते 2 अप्रैल, वर्ष प्रतिपदा के अवसर पर मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री शिवराजसिंह चौहान ने 'भारत विक्रम' यूट्यूब चैनल का लोकार्पण किया था। इस यूट्यूब चैनल के माध्यम से विक्रमकालीन इतिहास, संस्कृति और परम्परा का आख्यान छोटी फिल्मों के माध्यम से प्रसारित किया जाएगा। 'भारत विक्रम' श्रृंखला में अनेक फिल्मों का निर्माण किया जा रहा है जिसके प्रसारण का सिलसिला भी आरंभ हो चुका है।

'भारत विक्रम' यूट्यूब चैनल में भारतीय परम्परा के अनुरूप चैत्र प्रतिपदा को सृष्टि का आरंभ दिवस माना गया है। इस खास दिन पर केन्द्रित फिल्म 'भारत विक्रम' यूट्यूब चैनल पर देखी जा सकती है। संभवत: कम लोगों के संज्ञान में यह बात है कि सम्राट विक्रमादित्य ने अयोध्या में मंदिर निर्माण कराया था। इस पूरी कथा पर 'भारत विक्रम' यूट्यूब चैनल के लिए फिल्म का निर्माण किया गया है। इसी तरह देश भर में स्थापित बारह ज्योर्तिलिंगों की जानकारी देते हुए फिल्म का निर्माण किया गया है। इन ज्योर्तिलिंगों के बारे में कई अनुछये पहलुओं से अवगत कराया गया है। आने वाले समय में भारत ज्ञान परम्परा के साथ विश्व के जिन देशों में सम्राट विक्रमादित्य का हस्तक्षेप रहा है, उनकी कथा-गाथा पर केन्द्रित फिल्मों का प्रसारण किया जाएगा।

उज्जैन में 25 मार्च से 2 अप्रैल, 2022 तक सम्पन्न विक्रमोत्सव की रिपोर्ट के साथ प्रस्तुत अलग अलग भाषाओं में मंचित नाटक भी आप देख सकते हैं। सोफिया दास्तागोई द्वारा प्रस्तुत पढ़ंत की मोहक प्रस्तुति भी आप विक्रम भारत पर देख सकते हैं। यूट्यूब पर 'भारत विक्रम' को देखने के लिए https://youtube.com/channel/UCpeZ-d1AJUKlJtSKpiHuUJw लॉगइन करें।

पुस्तक चर्चा/राजेश्वर त्रिवेदी

भारत विखंडन की साजिशें बड़ी गहरी हैं

'भारत विखंडन' एक पुस्तक है जो भारत और इसकी विविध संस्कृति के भीतर अव्यक्त क्षमता के पक्ष में बोलती है। यह तर्क देती है कि तीन प्रमुख पश्चिमी संस्कृतियों द्वारा देश की अखंडता को नष्ट किया जा रहा है और इस प्रक्रिया के परिणाम पर चर्चा करती है। यह पुस्तक प्रसिद्ध द्रविड़ आंदोलन की उत्पत्ति की जाँच करती है जिसने हमारे देश की विशाल संस्कृति को आकार दिया, जबकि दलित पहचान और इसकी वर्तमान स्थिति पर भी ध्यान दिया। पुस्तक मुख्य रूप से स्वतंत्र भारत के अधीनता, निगरानी और तोड़फोड़ पर केंद्रित है। भारत विखंडन आधुनिक भारत में बदलते रुझानों को बारीकी से देखती है और इसके विकास और अंतिम रूप से कमजोर पड़ने के कारणों पर सवाल उठाती है।

यह हमारी प्राथमिकताओं और निष्ठाओं पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर करते हुए राष्ट्र के लिए एक वेकअप कॉल है। इसकी ऐतिहासिक और टकराव सामग्री के लिए प्रशंसा की गई है, जबकि उन कठोर सच्चाइयों से इनकार करने से इनकार किया जाता है, जिन पर चर्चा करने की आवश्यकता है। यह पुस्तक हार्पर हिंदी द्वारा 2014 में प्रकाशित की गई थी और पेपरबैक में उपलब्ध है। मुख्य विशेषताएँ, यह एक ही लेखक द्वारा ब्रेकिंग इंडिया शीर्षक का हिंदी अनुवाद है।

1950 में जन्में राजीव मल्होत्रा भारतीय मूल के अमेरिकी लेखक, विचारक तथा प्रखर वक्ता हैं। वे 'इनफिनिटी फाउण्डेशन' के संस्थापक हैं। मल्होत्रा के 'इनफिंटी फाउंडेशन' ने पिछले कई वर्षों में बहुत-से विद्वानों और परियोजनाओं को आर्थिक सहायता देकर विश्वविद्यालयों में भारतीय ज्ञान परम्परा को स्थापित करने का प्रयास किया है।

अपनी इस पुस्तक के विषय में वे कहते हैं कि-'यह किताब *भारत विखंडन* पिछले दशक के मेरे उन तमाम अनुभवों का नतीजा है जिन्होंने मेरी शोध और बौद्धिकता को प्रभावित किया है। नब्बे के दशक की बात है, प्रिंसटन विश्वविद्यालय के एक अफ्रीकन-अमरीकन विद्वान ने बातों बातों में जिक्र किया कि वे भारत के दौरे से लौटे हैं जहाँ वे 'एफ्रो-दलित' प्रोजेक्ट पर काम करने गए थे।

तब मुझे मालूम चला कि यह अमरीका द्वारा संचालित तथा वित्तीय सहायता-प्रदान प्रोजेक्ट भारत में अंतर्जातीय-वर्ण

'इस तरह, अमरीकी नस्लवाद, गुलामी और श्वेत/अश्वेत सम्बन्धों का इतिहास भारतीय समाज पर थोपा जा रहा है। यद्धपि आधुनिक जाति-व्यवस्था की बुनावट और उसके अन्तर सम्बन्धों में ऐसे कई चरण रहे हैं जिनमें दलितों के प्रति पूर्वाग्रह रहा है, किंतु भारत दलितों के अनुभवों और अमरीका के अफ्रीकी गुलामों के अनुभवों में तनिक सी भी समानता नहीं है। फिर भी अमरीकी अनुभव के आधार पर, अफ्रीकी दलित परियोजना, भारत के दलितों को 'एक भिन्न नस्ल के लोगों के हाथों पीड़ित हुए समुदाय' के रूप में चित्रित करते हुए उन्हें एक विशेष रूप से 'सशक्त' बनाने का प्रयास कर रहा है।'

-इसी पुस्तक से

सम्बन्धों तथा दलित आंदोलन को अमरीकन नज़रिए से देखने का प्रकल्प है । एफ्रो-दलित प्रोजेक्ट दलितों को 'काला' तथा गैर-दलितों को 'गोरा' जताता है। अमरीका के जातिवाद, दासत्व परम्परा तथा काला-गोरा सम्बन्धों के इतिहास को यह प्रकल्प सीधे-सीधे भारतीय समाज पर अक्स कर देने की योजना है।

हालाँकि भारत में नए जाति समीकरणों और उनके आपसी द्वन्दों ने मुद्दतों से दलितों के खिलाफ एक अलग मनोभाव पैदा कर दिया है लेकिन इसके बावजूद इसका अमरीका के 'दासत्व-इतिहास' के साथ दूर-दूर तक मुकाबला नहीं किया जा सकता। अमरीकन इतिहास से प्रेरित इस एफ्रो-दलित प्रोजेक्ट की कोशिश दलितों को दूसरी जातियों द्वारा सताए गए- ऐसा जता कर उनको एक अलग पहचान और तथाकथित सक्षमता प्रदान करना है।

अपनी तौर पर मैं 'आर्य' लोगों के बारे में भी अध्ययन कर रहा था- ये जानने के लिए कि वे कौन थे और क्या संस्कृत भाषा और वेद को कोई बाहरी आक्रान्ता ले कर आए थे या ये सब हमारी ही ईजाद और धरोहर हैं, इत्यादि।

इस संदर्भ में मैंने कई पुरातात्विक, भाषाई तथा इतिहास प्रेरित सम्मेलन और पुस्तक प्रोजेक्ट्स भी आयोजित किये ताकि इस मामले की पड़ताल में गहराई से जाया जा सके। इसके चलते मैंने अंग्रेजों की उस 'खोज' की ओर भी ध्यान दिया जिसके हिसाब से उन्होंने द्रविड़-पहचान को ईजाद किया था-जो असल में 19वीं शताब्दी के पहले कभी थी ही नहीं और केवल 'आर्यन थ्योरी' को मजबूत जताने के लिए किसी तरह रच दी गयी थी। इस 'द्रविड़-पहचान' के सिद्धांत को प्रासंगिक रहने के लिए 'विदेशी आर्य' के सिद्धांत का होना और उन विदेशियों के कुकृत्यों को सही मानना आवश्यक था।

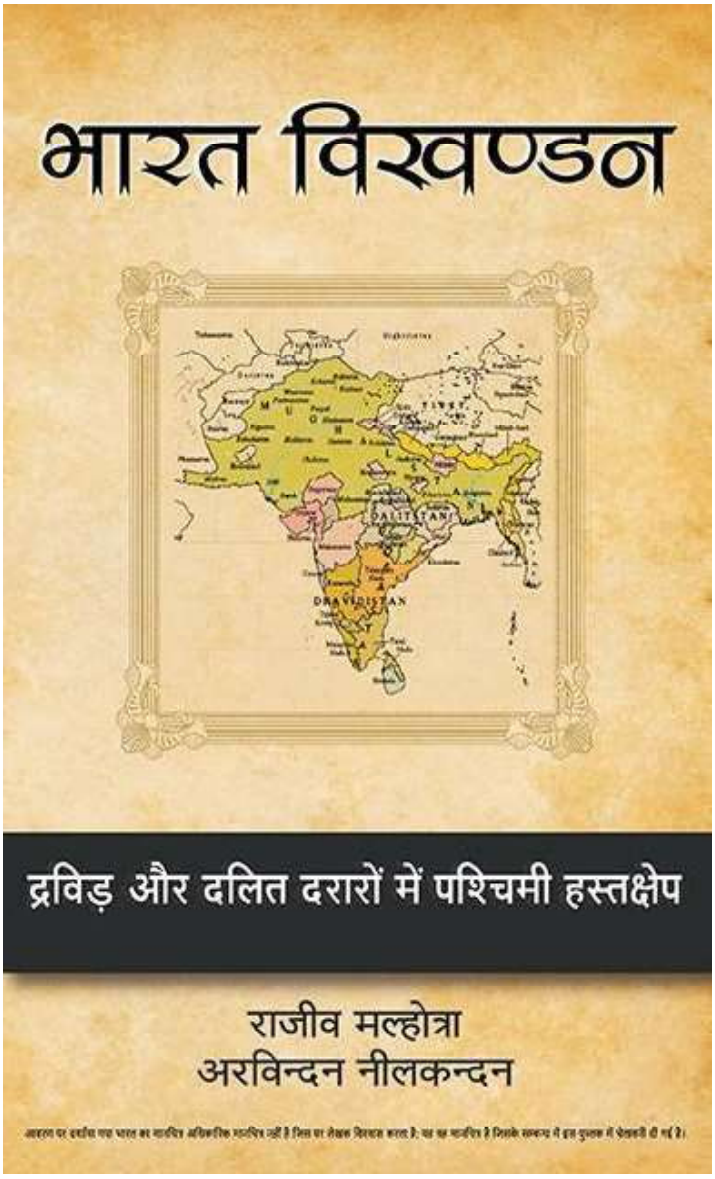

पुस्तक- भारत विखंडन
लेखक -राजीव मल्होत्रा
प्रकाशक- हार्पर कॉलिंस
मूल्य- 599

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ संस्थान स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग मध्यप्रदेश शासन के लिए 1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक श्रीराम तिवारी. समन्वयक मनोज कुमार.
आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन : 0734-2521499 0755-2660407 e-mail : mvspujjain@gmail.com,vikramadityashodhpeeth@gmail.com